International Referred Research Journal, January, 2011. ISSN- 0974-2832 VoL.II *ISSUE-24

शोध पत्र- चित्रकला

लोककला का आधुनिक कला पर प्रभाव

* डॉ. मनोरमा चौहान

January, 2011

* विभागाध्यक्ष, शा. महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर

Hkfedk %&

''कला'' शब्द का सबसे पहला और प्रामाणिक प्रयोग सम्भवतः भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है, जहां ज्ञान, शिल्प, विद्या तथा कला को पृथक–पृथक माना गया है।

u rUtkuo rfPN"i u lk fo|k u lk dykA

कला भावों की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति है। भावों का आधार सत्य, ईश्वर, बाह्य प्रभाव, सौन्दर्यानुभव कुछ भी हो सकता है, मात्र अभिव्यक्ति ही कला नहीं है, उसके साथ सौन्दर्याभिव्यवक्ति भी आवश्यक है, क्योंकि जो सुंदर नहीं है, वह कल्याणकारी नहीं हो सकता और जो कल्याणकारी नहीं है, वह आनन्ददायी नहीं हो सकता।

हमारे सभी क्रियाकलापों में आत्मा की जो अभिव्यक्ति होती है। उनमें शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार का आवरण बना रहता है। जहां आत्मा इन्द्रियों की आसक्ति से स्वतंत्र होकर अभिव्यक्त होती है। वहीं सत्य है, वहीं कला है। कला का चाक्षुक रूप आंख को संवेदना प्रदान करता है। वैदिक युगमें मानव की सौन्दर्यानुभूति के जो आदर्श थे, आगे के युगों में उनका स्वरूप बदलता गया। किंतु प्रत्येक युग की कला में उस युग की छाप अंकित होती गयी। प्रागैतिहासिक चित्रों से यह सिद्ध होता है कि मानवमन सदैव अभिव्यक्ति के लिए कला कृतियां बनाया करता था। ये चित्र अनगढ़ दीवारों पर भले ही बने है, किंतु इनमें कलात्मकता के प्रमुख गुण विद्यमान है। इतिहास के समय से पहले ये चित्र मानव–मन की भावनाओं के पहले साकार रूप है।

ykddyk dk ikjfHkd Lo:i %–

लोककला में वातावरण का प्रभाव आकारों में शैली में तथा लोक निर्मित वस्तुओं या सामान्य आवासीय मकानों में, उसकी बनावट में औजार और हथियार, दैनिक कार्य में उपयोगी वस्तु, त्यौहार पर पहनी जाने वाली पोशाकों, गृहपूजा,धर्म–सम्बंधी, रीति–रिवाज, मनोरंजन की वस्तुएं, जीवन की प्रमुख घटनाओं, जन्म, मृत्यु, विवाह, संस्कार इत्यादि पर पड़ता है। हड़प्पा सभ्यता के नागरिक इतने कला प्रेमी थे कि उनके प्रयोग में आने वाले पात्रों के अतिरिक्त भण्डार के लिए प्रयुक्त बड़े पात्रों तथा मृतक के साथ जमीन में गाड़ने के पात्रों पर भी विविध आलेखन चित्रित किये गये। बर्तन पर बनाए गए आलेखन एवं आ.तियों कलाकारों की कल्पनाशीलता एवं सुरूचि का प्रमाण है। वृक्षों तथा पौधों का चित्रण प्रायः किया ही गया है, किंतु इनमें पीपल को सर्वाधिक प्रमुखता मिली है। पशु–पक्षियों में हिरन, बकरी, गाय, कछुआ, मछली, मोर आदि का चित्रण पर्याप्त मिलता है। ज्यामितिक संरचनाओं में त्रिभुज तथा केन्द्र से चार कोनों पर जाती हुई चार पत्तियों का मोटिफ सर्वाधिक चित्रित हुआ है। लोककला अत्रिम होती है, इसीलिए उसका रूप इतना सरल और हृदय ग्राही है कि भले ही जीवन के गुढतम विश्लेषण को वह व्यंजित न कर सके पर निष्ठा की अतल गहराई, अव्यस्थित रेखाओं में भी सजीव चित्र उपस्थित कर देती है। इसके सौन्दर्य में झांकने के लिए तर्क–वितर्क नहीं, हृदय की संवेदनशीलता चाहिए।हमारी इस लोककला को परम्परा से आगे बढ़ाने का कार्य ग्रामीण जनता ने किया। उसने अपनी प्राचीन संस्कृति और कला की विरासत को जीवन–दान देकर एक ओर तो प्रभुत्वशाली वर्ग की दासता से उसकी रक्षा की और उसमें इतनी जीवनीशक्ति भारी कि वह विश्वकला की प्रगतिशील भावधारा के साथ आगे बढ़ सके।

समय के साथ स्वभावतः नये तत्वों को पुराने ढांचों में ढालकर हमारी जो सांस्कृतिक एवं कलात्मक विरासत आगे बढ़ी उसमें परिष्कार के साथ–साथ व्यापकता भी थी। यह मिश्रण तथा परिष्करण, जूठन या अनुकृति नहीं थी। बल्कि विचारों के नवोत्थान की भाँति कलात्मक जागृति तथा सांस्कृतिक उत्थान का शिष्ट स्वरूप था। भारतीय लोकजीवन में प्राचीन काल से ही धरती के प्रति अथाह पूजा भाव रहा है। धरती के प्रति लोक–जीवन की इस उत्कृष्ट आस्था को श्रुतियों ने अनेक तरह से बताया है। इसके अतिरिक्त हमारे दार्शनिकों ने भूमि–तत्व की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है।

परम्परागत हमारी लोक रूचियों को जीवित रखने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों में लोककला ने जो कार्य किया विज्ञान और दर्शन की दृष्टि से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। हमारे लोक–कलाकारों ने जिनमें स्त्रियों की मुख्यता रही है, धरती के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा को अपने हृदय की अजस्त्र रस–धारा द्वारा अभिसंचित करके कुछ ऐसी सहज, सुंदर कला. तियाँ हमें दी ,जो हमारे राष्ट्र की सम्पूर्ण चेतना को आल्हादित करती है। विषय की दृष्टि से इन लोकचित्रों का अपना महत्व है। चित्रों में प्रायः प्राकृतिक सुषमा को व्यंजित करना होता है। उनमें फूल, पत्ते, वृक्ष, बल्लरी, पशु–पक्षी आदि का अधिकता से चित्रण होता है, जिससे उनमें कोमलता, सुंदरता और हरा–भरा–पन दिखायी देता है। अन्य लोकचित्रों में स्थानीय रूचियों के अनुसार विषयों का समावेश होता है। यदि मोटे तोर पर देखा जाए तो इन चित्रों का विषय देवी–देवताओं, किवंदन्दियों, आख्यानों, नीतिकथाओं, जातकों, नाटकीय दृश्यों और पौराणिक कथाओं से संबंद्ध होता है। प्रत्येक त्यौहार पर उसके अधिष्ठाता देवता और

उस देवता के सहर देवताओं को अंकित किया जाता है। इन देवताओं में बहुधा लक्ष्मी और गणेश होते हैं, जिनको कि आरोग्य समृद्धि और मंगल का सूचक समझा जाता है, कुछ चित्र प्रा. तिक दृश्यों और कुछ सामाजिक विश्वासों से भी संबंधित होते हैं। पशु–पक्षियों के चित्र अंकित करना मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति रही है। प्रागैतिहासिक युग से लेकर मध्ययुग तक की जितनी भी चित्र शैलियाँ हैं। उनमें सर्वत्र ही पशु – पक्षियों का मनोरम चित्रण देखने को मिलता है।

मध्ययुगीन कलाकृतियों में इस प्रकार का पशु–पक्षी चित्रण प्रायः प्रणय, विरह, मिलन आदि के प्रतिकों के रूप में किया गया है। साहित्य में पक्षियों का वर्णन और उनके द्वारा संदेश लाने ले जाने का कौशल बहुधा देखने को मिलता है। हमारे साहित्यकारों और चित्रकारों ने पशु–पक्षियों को चित्रण मंगल कामना से भी किया गया है। हमारे कृषिजीवी समाज में पशुओं का महत्व आदि से ही स्वीकार किया गया है। पक्षियों की प्रेम उल्लास और कोमलता, सारस, चकोर, हरिण, घोड़ा और हाथी आदि पशु–पक्षियों को प्रायः लोककला में चित्रित किया जाता

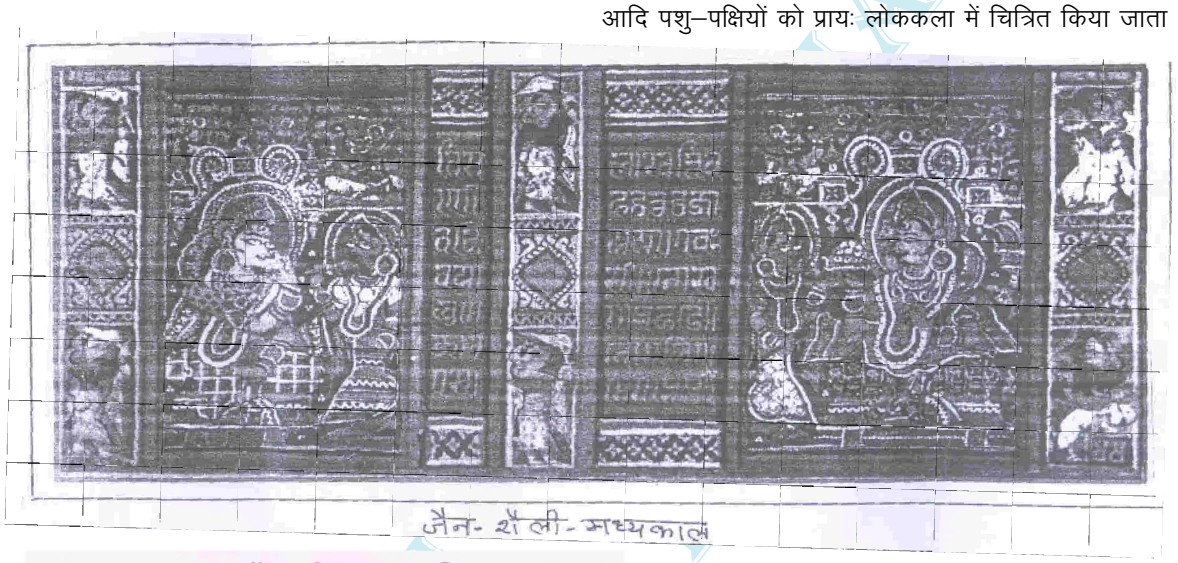

जैन- शैली- मध्यकाल

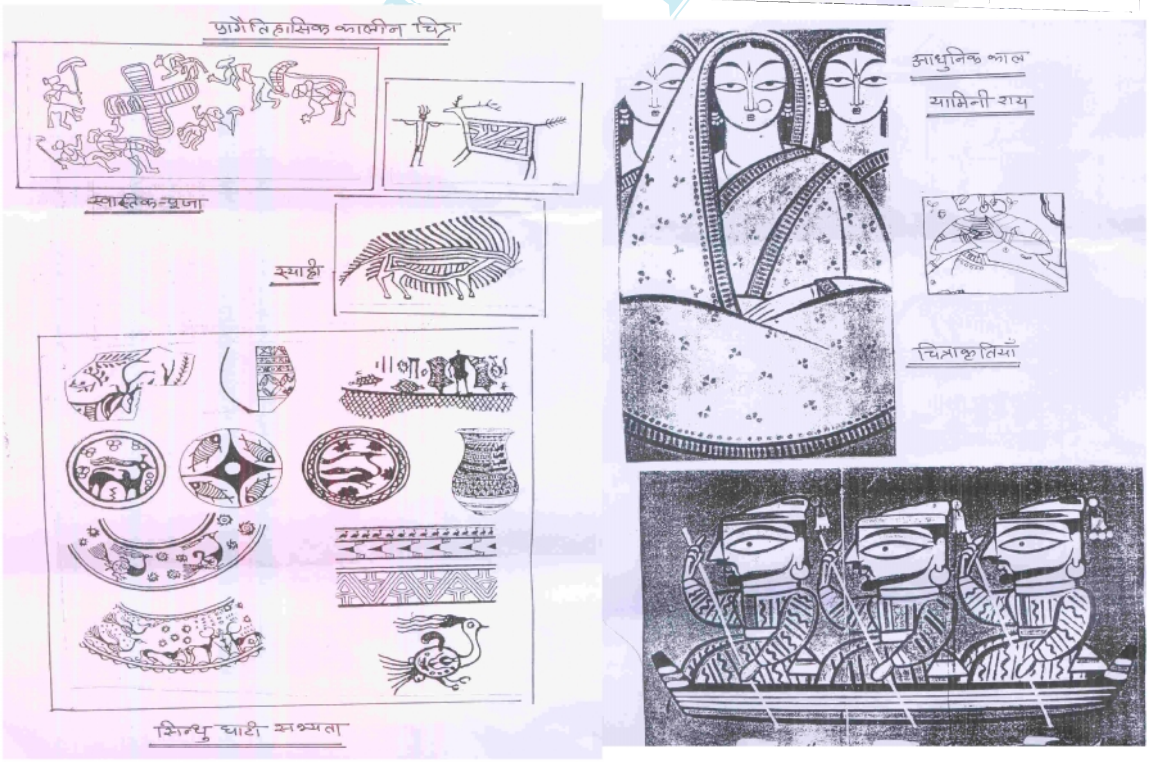

है। इनको मंगल, स्वस्तिक और सिद्धि का सूचक माना गया है। इनके अतिरिक्त फूल–पत्तियों और रंग बिरंगी भावात्मक आकृतियाँ भी चित्रित की जाती है।शंख, स्वास्तिक, आभूषण, गृह–कुण्डलियाँ, चक्र, कलश आदि मंगलमय एवं सुख–समृद्धि के सूचक स्वरूप हमारी लोककला आज मांडना, अल्पना चोक–पूरना, रंगोली, थापे, सांझी आदि के विभिन्न रूपों में समस्त लोकमानस में संपूजित है। इसमें कोई पाबंदी नहीं है। इनमें धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक जीवन के किसी भी अंश को लिया जा सकता है।

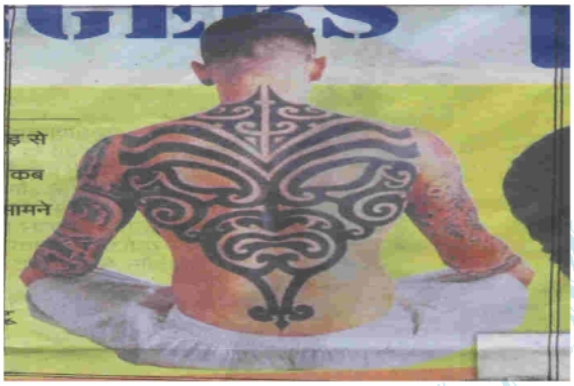

xknuk ¼VSVw½ dk vk/kfud Lo:i

जैन चित्रकला में तत्कालीन लोक जीवन की सच्चे–अर्थों में अभिव्यक्ति हुई है। ऐसा तभी संभव हुआ, जबकि वह धार्मिक सीमाओं में बंधी रही उसकी आकृतियों, रेखाओं और साज–सज्जा आदि सभी में लोककला का समर्थ रूप विद्यमान है। जैसे सांची और भरहुत की कृतियाँ में हैं।इसलिए लोककला का जो वास्तविक लोककला का आधार ''कल्पसूत्र'' तथा ''आचारांगसूत्र'' में वर्णित जैन तीर्थंकारों की जीवनी और ''कालकाचार्य कथा''रही है। ये कथाएं बड़ी ही मनोरंजन है और तत्कालीन लोक जीवन, लोक–संस्कृति और लोक–विचारों की अभिव्यंजना करती है।

साहित्य के क्षेत्र में जिस प्रकार अपभ्रंश भाषा ने लोक–जीवन के उदान्त पक्ष को व्यक्त किया चित्रकला के क्षेत्र में उसी प्रकार जैन कला ने जन–जीवन की झांकियां प्रस्तुत की। उसकी सचित्र हस्तलिखित पोथियों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने उदयकाल से ही वह लोक–परम्पराओं एवं लोक–विश्वासों को गृहण करने लग गयी थी। वस्तुतः उसका आरंभ लोक–प्रेरणा से हुआ था और अपनी सम्पन्नावस्था से लेकर अपनी सांध्यबेला तक उसमें लोक–सम्पर्क की भावना बनी रही। पहाड़ी शैली के अंतर्गत ''बसोहली शैली''का जन्म पहाड़ी लोककला तथा मुगलकला के समन्वय से हुआ। यह शैली वहां लोककला का परिकृत रूप है। इस शैली में चेहरे स्थानीय लोककला पर आधारित हैं।

vk/kfud dyk ij ykddyk 'kyh dk iHkko ¼&

जिस प्रकार भारतीय वाग्मय का इतिहास भारतीय बोलियों के साहित्य के बिना अधूरा है। उसी प्रकार भारतीय चित्रकला का इतिहास उसकी लोककला के बिना अपूर्ण है। लोककला से हमारा स्वाभाविक अपनत्व है। भारतीय कला और विशेषतः चित्रकला के संवर्धन की दृष्टि से उसका विशिष्ट महत्व रहा है। अनादि लोककला से प्रेरणा प्राप्तकर हमारे सभी युगों के चित्रकारों ने अपनी कला कृतियों में लोकप्रियता का तत्वभरा। आज का चित्रकार प्राचीन चित्र–शैलियों की मान्यता के संबंध में भले ही मतभेद रखता हो, किंतु लोककला के लिए उसकी भी स्वाभाविक अभिरूचि है। लोक शैली की प्रेरणा से आज के प्रतिष्ठा प्राप्त कुछ चित्रकार अच्छे प्रयोग प्रस्तुत कर रहे हैं। लोक–शैली से प्रेरित इस प्रकार के आधुनिक चित्र–सामाजिक जीवन में उसी निष्ठा से अपनाये जा रहे है।

आधुनिक भारतीय चित्रकला में ''बंगाल स्कूल'' का बड़ा महत्व है। बंगाल स्कूल वस्तुतःपरम्परागत भारतीय चित्रकला का पुनर्जागरण था। एक नवीनीकरण था। उसके जीवनकाल में इस प्रकार के परिवर्तन समय–समय पर होते रहे।बंगाल स्कूल के भारतय चित्रकला में लोककला के जन्मदाता ''श्री यामिनी राय'' ने आधुनिक चित्रकला की पश्चिम की कला शैली के अन्धानुकरण को हेय और हीन दृष्टि से देखा। आधुनिक चित्रकला में यामिनी बाबू का इसलिये भी ऐतिहासिक महत्व है क्योकिं वे अन्त तक अपने उद्देश्यों पर अडिग बने रहे। यही कारण हे कि विदेशों में आज तक वास्तविक भारतीय कलाकारों का मूल्यांकन होता है तो यामिनी बाबू की कला–कृतियाँ एकमत से अपनायी जाती है। समकालीन कला को आधुनिक परिवेश में भारतीय बनाये रखने का श्रेय यामिनी राय को है। जिन्होने लोककला को अपना मूल आधार बनाकर उसमें आधुनिकता की सांस फूंक दी। उन्होने भारतीय कला को नया मोड़ दिया व माटी की गंध को अनुभव कर, देश की विशुद्ध बंगाल के लोक–कला रूपों को अपने चित्रों का विषय बनाया। मौलिक कला तत्वों में भारतीय संस्कृति का समावेश किया और एक लोकोन्मुख कला–शैली का विकास किया जिसकी पहचान व ख्याति भारत में ही नहीं, बल्कि कालांतर में सारे विश्व में फैली और स्थापित हुई। उन्होने कला को आधार बनाकर अपनी नई लोक–शैली विकसित की तथा अभिप्रायों व रूपों को ग्रहण कर उसे नवीन चित्रात्मक शैली में पिरोया।

वे निःस्वार्थ भाव से आडम्बर हीन लोककला के उन्नयन में लग गये। लोक प्रथाओं व विषयों को कला में मुख्यतः प्रदान करने का उद्देश्य यह था कि लोगों को उन अंचलों से अवगत कराएँ जहाँ भारत की आत्मा निवास करती है।रायबाबू ने विलायती रंगों का प्रयोग न करके देशी व लोक रंगों से ही चित्रकारी की। लोककला के लगाव के कारण ही उनके चित्रों में लाल, पीले, नीले, काले व भूरे रंग भड़कीले व चटख रूप में उपस्थित हुये।कागज एवं केनवास पर चित्रकारी के साथ मिट्टी के खिलौने भी खूब बनाए हैं। उन्होने लालरंग का हरमची और गेरूरंग से, पीला रंग रामरज और देवड़ी से, नीला रंग नील से, सिंदुरी रंग सिंदुर से, हरा रंग स्थानीय पहाड़ के पत्थर को पीसकर, कालारंग काजल से तथा इमली के बीजों से अपने हाथों से बनाकर प्रयोग किया। केनवास पर जो चित्र बने उनमें अपने घर पर काते गए धागे से कपड़ा तैयार करके उनके ऊपर गोबर तथा जलोढ़ मिट्टी के मिश्रण को उन पर पोतकर चित्र रचना की है।

रायबाबु की दृष्टि हमेशा ही नये–नये अनुसंधानों को रूपायित करने की आरे रही है। उन्होने लोककला की अनुभूतियों को विशेष रूप से ग्रहण किया। उन्होने अपने देश की संस्कृति ग्राम्य–जीवन संबंधी चित्रों की अपनी कला में समाहित किया । उन्होने उस भावमयी लोककला को अपनाया, जो इस देश की अपनी थी और जिसके उज्ज्वल भाल पर धूल की परतें जम चुकी थी। इस ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा उन्हें ग्रामीण शिल्पकारों से प्राप्त हुई थी। उनके राम तथा कृष्ण सम्बंधी चित्रों में सुनियोजित कलात्मक उद्देश्य की पूर्ति होती है।आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में उनका यह नया आंदोलन इतिहास की अविस्मरणीय घटना के रूप में याद किया जाता है, और वास्तव में यहीं इस देश की संस्कृति का वास्तविक स्वरूप है। कला की उन्नति में लोककला का भी बहुत महत्व रहा है। कला का विकास तो राज्याश्रयों में पेशेवर कलाकारों द्वारा हुआ है। परंतु लोककला का विकास, घरों के आंगनों में ,ग्रामों में, अशिक्षित जातियों में, बिना कोई प्रसिद्धी के शांत व अबाध रूप से, धार्मिक तथा सांस्कृतिक व पारिवारिक परम्पराओं के साथ बिना बौद्धिक पुट के होता आ रहा है। लोककला को किसी आश्रय, प्रलोभन या प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं होता। वह तो स्वच्छन्दता तथा मौलिकता के साथ सदा प्रगति करती है क्योकिं उसका सम्बंध तो प्राणी मात्र से है।

fu"d"k %&

वस्तुतः देखा जाए जो आधुनिक लोककला आदि कला का ही विकसित रूप है। लोककला से यदि आदिम शब्द हटा लिया जाए तो भी यह एक सामान्य सांस्तिक वातावरण में पलती रहती है। इसका सीधा संबंध वातावरण से है। ये वस्तुएं ऐसे समय परिस्थित और वातावरण के कारण निर्मित हुई है, जिनमें इन्हें बनाने वाले लोग रहते है। इसकी अपनी परम्परा उतनी ही कठोर है, जितनी कि संग्रहालय कला की है। अक्सर यह किसी विशेष कलाकार की वह भाषा होती है। जो किसी खास जनता को संबोधित की हुई होती है। लोककला से हमारी इतनी निकटता एवं आत्मीयता है कि उसकी उपस्थिति को हम सभी जगह अनायास ही चिन्ह लेते है। एक कलाकार से लेकर एक साधारण ग्रामवासी में लोककला के लिए समान अभिरूचि है। उसकी सरलता को दोनों समान रूप में अनुभव करते हैं, क्या घर में, क्या बाजार में और क्या कला–निकेतनों में सर्वत्र ही । सभी रूपों में, उसको हम पहचान लेते है। हमारे मन–मानस पर उसकी लोकप्रियता की छाप अमिट रूप में बनी हुई है।

भारतीय चित्रकारों और चित्र शैलियों की दृष्टि से जहां तक लोक कला के परिपोषण तथा संवर्धन का संबंध है। सुविदित है कि उसको व्यापक रूप से अपनाया गया और उसके सौन्दर्य मण्डित आलंकारिक आधारों पर नये–नये रूपों में प्रस्तुत किया गया। अजन्ता के चित्रों से लेकर बंगाल के व्यावसायिक पटचित्रों और राजस्थान के नगरों में बिकने वाले श्रीनाथजी आदि के धार्मिक चित्रों तक, सर्वत्र, लोककला की प्रेरणा देखने को मिलती है। परोक्ष प्रत्यक्ष रूप से लोक जीवनी तत्वों को हमारे सभी पुरातन एवं नवीन चित्रकारों ने ग्रहण किया है।

अनादि लोककला से प्रेरणा प्राप्त कर हमारे सभी युगों के चित्रकारों ने अपनी कला–कृतियों में लोकप्रियता का तत्व भरा। आज का चित्रकार प्राचीन चित्र–शैलियों की मान्यता के संबंध में भले ही मतभेद रखता है। किंतु लोककला के लिए उसकी भी स्वाभाविक अभिरूचि है। लोकशैली की प्रेरणा से आज के प्रतिष्ठा प्राप्त कुछ चित्रकार अच्छे प्रयोग प्रस्तुतिकरण में अंतर आया है।लोककला की परम्पराओं में जहां एक ओर लोककला के कई अंगो का आज के आधुनिक युग में ह्रास होता जा रहा है वहीं ''गोदना'' एक फैशन के रूप में उभरकर विकास की सीढ़ियां लांघ रहा है। आधुनिक युवक–युवतियों बड़ें चाव से अपने शरीर पर गोदना अंकित करवाकर प्रसन्न होते हैं । आधुनिक विधि द्वारा बिना दर्द के गोदना गोदा जाता है। यह कला ग्रामों के साथ–साथ शहरी क्षेत्रों में भी पर्याप्त रूचि के साथ अपनायी जा रही है।अंग्रेजी राज्य के कारण हमारी लोककला को बहुत आघात पहुंचा। हमारी भरी हुई बहुमूल्य लोककला व संस्कृति को नष्ट किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद फिर से एक चेतना भारत में फैली अपनी दबी हुई महान लोककला का पुनरूथान करने के लिए लोककला पर आधारित चित्रकला व अन्य कलाओं को प्रोत्साहन दिया जाने लगा तथा हर क्षेत्र में लोककला का आदर हुआ। आज के आधुनिक युग में जिस प्रकार हर वस्तु का आधुनिकीकरण हो रहा है। लोककला अपने परम्परागत रूप में और भी परिकृत तथा परिमार्जित होकर पनप रही है। हर क्षेत्र में लोककला का महत्व बढ़ता जा रहा है। लोक कलाकारों को पुरस्कृत किया जाता है। यह सब लोककला की समाज में पुनरावृत्ति तथा जागृति का ही द्योतक है। इस प्रकार हमारी लोककला प्राचीनकाल से अनवरत रूप में अपने पूरे वैभव के साथ अपनी प्रतिष्ठा को कायम किये चली आ रही है। आज उस पर अधिक व्यापक और वैज्ञानिक दृष्टि से कार्य किया जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1 डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल क्ला और संस्कृति 2 डॉ. वाचस्पति गेरोला भारतीय चित्रकला 3.इन साइक्लोपिडिया ऑफ वर्ल्ड आर्ट वाल्यूम – 5 4 शचीरानी गुर्टू कला–दर्शन 5 डॉ. जसलीन धमीजा 1 भारत की लोककला और हस्तशिल्प 6 डॉ. रीता प्रताप भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास 7 लोकेश चन्दु शर्मा भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास 8 रतनलाल गोस्वामी गोदनाकार, बक्षीबाग, उज्जैन 9 द. पिक्चर इन साइक्लोपिडिया ऑफ आर्ट थेम्स एण्ड हड़सन 10.गुलाबचंद जैन भारतीय चित्रकला एवं शिक्षण सामग्री 11.डॉ. एस.के. जोशी मालवा की (उज्जैन) लोककला